स्वतंत्रता,अनुशासन और शासन

स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच एक अस्पष्ट सीमा रेखा होती है। इस सीमा रेखा के भीतर का आचरण व्यक्ति की स्वतंत्रता मानी जाती है और उसका उल्लंघन उच्श्रृंखलता मानी जाती है। सीमा रेखा के अंदर का व्यवहार व्यक्ति के मौलिक अधिकार होते है और सीमा रेखा से बाहर का व्यवहार अनुशासन हीनता या अपराध। स्वयं विकसित, दीर्घकालिक, नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियों के समूह को समाज कहते है। इस तरह ऐसी स्वनिर्मित सीमा रेखा का पालन सबके लिये अनिवार्य है, चाहे वह व्यक्ति हो, परिवार हो, सरकार हो या स्वयं समाज ही क्यो न हो। यह सीमा रेखा अस्पष्ट है, अघोषित है किन्तु अपरिवर्तनशील है। अर्थात इस सीमा रेखा में परिस्थिति अनुसार अल्पकाल के लिये व्यावहारिक संशोधन तो हो सकते हैं किन्तु बदलाव नहीं। इसका अर्थ हुआ कि राज्य भी ऐसी सीमा रेखा में न कोई बदलाव कर सकता है न अतिक्रमण।

व्यक्ति सीमा रेखा के बाहर जाने से स्वतः अपने को रोक लेता है तो उसे स्वशासन कहते हैं। किन्तु यदि ऐसा व्यक्ति स्वतः को नहीं रोक पाता और परिवार या समाज के भय से रुकता है उसे अनुशासन कहते हैं। जो व्यक्ति न स्वशासन को माने, न अनुशासन को माने, उस व्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए जिस इकाई को दायित्व दिया जाता है उसे शासन कहते हैं। इस तरह व्यक्ति पर अनुशासन स्थापित करने का दायित्व परिवार और समाज का होता है और शासन का दायित्व सरकार का। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी परिवार, समाज और अंत में सरकार के द्वारा दी गई है।

परिवार का अर्थ हाता है सम्पूर्ण अधिकार समर्पित व्यक्ति समूह। परिवार समाज व्यवस्था की पहली मूर्त इकाई है। परिवार व्यवस्था व्यक्ति के सहजीवन की पहली पाठशाला है। यदि परिवार व्यवस्था ठीक नहीं हुई और उसमें व्यक्ति को स्वशासन की ट्रेनिंग नहीं दी गई तो ऐसा व्यक्ति आगे चलकर न अनुशासन को समझ पायेगा,न शासन को। इसका अर्थ हुआ कि परिवार व्यवस्था स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच संतुलन की ट्रेनिंग देने वाली पहली इकाई होती है।

दुनिया में मुख्य रुप से चार विचारधाराएँ वर्तमान में स्पष्ट हैं। इन चारों विचारधाराओं के द्वारा चार संस्कृतियॉ स्पष्ट दिख रही हैं––

1. इस्लामिक संस्कृति
2. साम्यवादी संस्कृति
3. पश्चिम की संस्कृति
4. भारतीय संस्कृति

इस्लामिक संस्कृति में व्यक्ति को कोई प्रकृति प्रदत्त स्वतंत्रता नही होती अर्थात् इस्लामिक संस्कृति में स्वतंत्रता और उच्श्रृखलता के बीच की सीमा रेखा या तो धर्म बनाता है या समाज। इस तरह समाज या धर्म तानाशाह होता है। राज्य भी धर्म से ही संचालित होता है। साम्यवाद में न धर्म होता है, न समाज, न व्यक्ति और न ही परिवार। वहॉ शासन ही सर्वोच्च होता है और एक प्रकार से शासन तानाशाह होता है। पश्चिम की संस्कृति में स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच एक सीमा रेखा का अस्तित्व होता है। यह सीमा रेखा न शासन द्वारा बनाई जाती है और ना ही धर्म द्वारा। बल्कि समाज और व्यक्ति के बीच ऐसी रेखा स्वतः बन जाती है। भारतीय संस्कृति में भी पश्चिम की तरह ही एक प्राकृतिक सीमा रेखा बनी हुई है। पश्चिम और भारत की

संस्कृति की सीमा रेखाओं में सिर्फ यही अंतर है कि पश्चिम की सीमा रेखा व्यक्ति के पक्ष में कुछ अधिक झुकी हुई है और भारतीय सीमा रेखा समाज के पक्ष में कुछ अधिक झुकी हुई है। मेरे विचार से आदर्श स्थिति वह होगी जब पश्चिम और भारत की सीमा रेखाएँ थोड़ा थोडा सरक कर बीच में एक जगह स्थिर हो जायें। पश्चिम और भारत को मिलकर इस संबंध में प्रयास करना चाहिए।

पिछले हजार वर्ष से भारत अनेक आक्रमणकारी संस्कृतियों की प्रयोगशाला बना हुआ है। पहले भारत इस्लाम की प्रयोगशाला बना और बाद में वह पश्चिम की प्रयोगशाला में बदलने को मजबूर हो गया। स्वतंत्रता के बाद भारत में साम्यवाद का प्रभाव बढ़ा जो लगभग 40 वर्षों तक चलता रहा। इस काल खंड मे राज्य ने स्वयं को समाज घोषित कर दिया और उसने यह मान लिया कि वह स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच की सीमा रेखा से उपर है तथा उसमे संशोधन परिवर्तन का अधिकार रखता है। विश्व मे चार प्रकार की व्यवस्थाए है। 1 राज्य नियंत्रित 2 राज्य विहीन 3 राज्य रक्षित 4 राज्य मुक्त। भारत में राज्य को ऐसी दिशा मे बढना था जहां समाज राज्य मुक्त दिशा मे चलने को स्वतंत्र हो किन्तु भारत समाज को किधर ले जा रहा है, यह स्पष्ट ही नहीं। भारत की दिशा राज्य नियंत्रित, राज्य विहीन और राज्य रक्षित को मिलाकर चलती दिख रही है। किन्तु राज्य मुक्ति के प्रयास शून्य है। अब भारत इस्लाम, साम्यवाद और पश्चिम के साथ मिलकर एक बेमेल खिचड़ी संस्कृति के साथ तालमेल बिठाने का प्रयास कर रहा है। पश्चिम की संस्कृति और साम्यवादी संस्कृति दोनों ही इस बात पर एकमत हैं कि परिवार व्यवस्था एक अनावश्यक व्यवस्था है और उसे धीरे धीरे कमजोर होना चाहिए। तब तक जब तक वह समाप्त न हो जाये। इस्लाम परिवार व्यवस्था को मजबूती से मानता है। किन्तु इस्लाम का प्रभाव भारत में घटता जा रहा है और पश्चिम का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, इसलिए परिवार व्यवस्था लगातार कमजोर हो रही है। पश्चिम मानता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित करना राज्य का दायित्व है। दूसरी ओर साम्यवाद मानता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता का कोई औचित्य न होने से राज्य का दायित्व उसे सुख सुविधा देने तक स्वैच्छिक है। दोनों ही भारतीय संस्कृति की परिवार व्यवस्था के अस्तित्व को अस्वीकार करते है। भारत इस नये खिचडी प्रयोग के परिणामों को भुगत रहा है अर्थात् इस अस्पष्ट प्रयोग के परिणामस्वरुप भारत में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। पश्चिम के देशों में ऐसी बेमेल खिचड़ी नही बनी जो तीन विपरीत गुण धर्म के अनाजों को मिलाकर बनी हो। ऐसी खिचड़ी साम्यवादी देशों में भी नहीं बनी और मुस्लिम देशों में भी नहीं बनी। भारत एकमात्र ऐसा देश रहा जहॉ इस तरह के कई विपरीत गुण धर्म वाले अनाज की खिचड़ी बनाकर उसे भारत पर थोप दिया गया। भारतीय संस्कृति इस बेमेल खिचड़ी में अपना अस्तित्व तलाश रही है और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है। भारत में चरित्र गिर रहा है, अनुशासन हीनता बढ़ रही है, और लगातार जीवन के हर क्षेत्र में हिंसा के प्रति विश्वास बढ़ रहा है। प्रशासन ओभर लोडेड है, स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच की सीमा रेखा अस्पष्ट होती जा रही है तथा एक अन्धकारमय भविष्य दिख रहा है।

अब भी भारत के भाग्यविधाता यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि इस सारी अव्यवस्था का कारण व्यक्ति और राज्य के बीच से परिवार और समाज व्यवस्था को निकालने का प्रयत्न है। मैं स्पष्ट हूँ कि जब तक बालक को परिवार से और बालिग को समाज से अनुशासन सीखने के अवसर नहीं मिलेंगे तब तक राज्य चाहे जितना भी प्रयत्न कर ले, समाधान तो होगा ही नहीं। बल्कि स्थिति और बिगड़ती जायेगी। मेरे विचार से परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को

पुनर्जीवित करना, परिभाषित करना तथा अधिकार सम्पन्न करना सभी समस्याओं के समाधान की शुरुवात हो सकता है।

मैं तो यह भी मानता हूँ कि भारत की न्याय व्यवस्था में भी परिवार और समाज का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होना चाहिए। वर्तमान न्यायव्यवस्था असफल है तथा अन्यायपूर्ण भी है। या तो अपराधी छूट ही जाते है अथवा वे असंतुलित दण्ड भोगने को मजबुर हो जाते है। आज व्यक्ति समझ ही नहीं पा रहा कि परिवार समाज और राज्य के बीच यदि कही मतभिन्नता हो तो उसे क्या करना चाहिए। आज यह बात बिल्कुल ही स्पष्ट नहीं है कि एक नवजात शिशु कितने प्रतिशत परिवार का है, कितने प्रतिशत समाज का है, और कितने प्रतिशत उस पर राष्ट्र का स्वामित्व है। अब तो धीरे धीरे ऐसा लगने लगा है कि राष्ट्र ने उस नवजात पर अपना सम्पूर्ण अधिकार स्थापित करना शुरु कर दिया है। एक परिवार में अवैध संतान पैदा होती है। संतान के परिवार के लोग उसे परिवार और समाज के अनुशासन के विरुद्ध मानकर उसकी हत्या का देते हैं और राज्य उसे पूरी तरह हत्या मानकर उसे दण्डित करता है। व्यक्ति समझ नहीं पाता कि उसने कितना गलत किया। एक लडकी के साथ किसी ने बलात्कार किया। थाने मे रिपोर्ट हुई। कोई गिरफतारी नही हुई। कुछ माह बाद उस लडके और लडकी का विवाह हो गया। दस वर्ष बाद पुलिस लडके को गिरफतार करके मुकदमा चलाती है। एक महिला अपनी यौन शुचिता को महत्वपूर्ण मानकर उसकी सुरक्षा पर सतर्क है और दूसरी अपनी भौतिक उन्नति को महत्वपूर्ण मानकर उसकी सुरक्षा के प्रति लापरवाह है। एक कामांध तथा काम क्षुधा पीडित व्यक्ति ने तात्कालिक उत्तेजना मे किसी के साथ बलात्कार करके अपनी भूख मिटाई और दूसरे ने उपलब्ध साधनों के बाद भी योजनापूर्वक बलात्कार किया। किसी ने किसी को बलपूर्वक बंधक रखकर बलात्कार किया और दुसरे ने कियी शर्त पर संभोग किया और शर्त पूरी नही की तो प्रश्न उठता है कि क्या सभी अपराध एक श्रेणी के हैं? क्या दूसरे के बालक और अपने बालक की हत्या समान रूप से दंडनीय है? क्या बलात्कार के बाद पीडित महिला के सारे अधिकार समाप्त हो जाते है? क्या सुरक्षित और असुरक्षित के बीच अपराध के प्रयत्न समान दंडनीय माने जा सकते है? मै मानता हूँ कि अपराध सब समान होते है किन्तु भावना, आवेश और योजना पूर्वक किये गये अपराध एक नहीं हो सकते हैं। परिवार और समाज के अनुशासन की रक्षा के नाम पर व्यक्ति ने जो गलती की है वह गलती कितनी गम्भीर है इस बात पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए।

इसी तरह भारत का सामान्य व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि भारत में स्त्री और पुरुष के बीच दूरी घटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जा रहा है अथवा दूरी बढ़ने को। आधुनिक व्यवस्था दूरी घटाने का प्रयास करती है तो परम्परागत व्यवस्था दूरी बढ़ाने का। आश्चर्य है कि दूरी घटाने और बढ़ाने के दो विपरीत प्रयत्नों को एक साथ प्रोत्साहित किया जा रहा है। सामान्य व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि सरकार चाहती क्या है? वह ठीक करता है फिर भी कहीं कानून के चक्कर में फंस कर न्यायालय के चक्कर लगाने लगता है। मैं तो इस बात का हूँ कि न्याय व्यवस्था में पश्चिम, साम्यवाद और मुस्लिम संस्कृतियों से अलग हटकर एक नये विचार पर सोचा जाना चाहिए। न्यायालय में विचारण अपराध पर विचार करते समय एक सरकार का प्रतिनिधि तो एक उस परिवार का प्रतिनिधि हो जिसके प्रति अन्याय हुआ है और एक उस गॉव का प्रतिनिधित्व हो, जिस गॉव का रहने वाला वह पीड़ित पक्षकार हो। अपराधी ने तीन के अनुशासन को तोड़ा है। तो उसे तीनों की तरफ से अलग अलग दण्ड की व्यवस्था होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यह विचार लीक से हटकर है किन्तु परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था और कानून व्यवस्था

को संतुलित और न्याय संगत करने के लिए अन्य उपायों के साथ यह भी एक उपाय हो सकता है।

परिवार की परिभाषा क्या हो, अधिकार क्या हो। इस मुद्दे पर अलग अलग विचार हो सकते है। किन्तु परिवार व्यवस्था को पुर्निजीवित होना ही चाहिए चाहे उसका तरीका कुछ भी क्यों न हो। वर्तमान व्यवस्था इससे ठीक उल्टी दिशा मे चल रही है और उसे उस दिशा मे ही आनंद प्राप्त हो रहा है। हमारा कर्तब्य है कि हम राज्य व्यवस्था को ठीक दिशा मे चलने के लिये तैयार करे या मजबूर करे ।

परिवार व्यवस्था कितनी पारम्परिक कितनी आधुनिक

आज तक दुनिया में कोई भी व्यवस्था ऐसी नहीं बनी है जिसमें बिल्कुल कोई गुण या कोई दोष न हो। चाहे राजशाही हो अथवा तानाशाही अथवा लोकतंत्र अथवा लोकस्वराज्य । सब में गुण दोष पाये जाते हैं। धूर्त लोग व्यवस्था के दोषों का प्रचार कर उसका अपने हित में लाभ उठाते है, जबकि वे तत्कालीन व्यवस्था का कोई अच्छा विकल्प प्रस्तुत नहीं करते।

व्यवस्थाएँ दो प्रकार की हैं:—1.परम्परागत 2. संशोधित या आधुनिक। परम्परागत व्यवस्था आमतौर पर रुढ़ हो जाया करती है और उसमें देशकाल परिस्थिति के अनुसार संशोधन बहुत कठिन होता है दूसरी ओर आधुनिक व्यवस्था धूर्तों तथा राज्य के तालमेल से बिना जन स्वीकृति के ही स्थापित करने का प्रयास होता है जो अंततः घातक परिणाम देती है। आदर्श स्थिति तो यह है कि राज्य को व्यवस्था परिवर्तन में कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और व्यवस्था परिवर्तन का अंतिम अधिकार सामाजिक निष्कर्ष पर छोड़ देना चाहिए। प्राचीन समय में ऐसा होता भी था किन्तु भगवान बुद्ध द्वारा संगठन बनाने की शुरुवात होने के बाद वह क्रम विकृत होने लगा जो धीरे धीरे अब पूरी तरह विकृत हो गया हैं।

हम अंतिम रुप से इस निष्कर्ष पर पहुॅच चुके है कि व्यवस्था में परिवार समाज और राज्य के बीच सामंजस्य होना चाहिए। दुर्भाग्य से वर्तमान भारतीय व्यवस्था में ऐसा कोई सामंजस्य न होकर इसके विपरीत राज्य की एक तरफा तानाशाही चल रही है। हमारा पहला कर्तव्य है कि हम अन्य प्रयत्नों को किनारे रखकर सबसे पहले परिवार समाज और राज्य के अधिकारों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करें। इसमें भी भारतीय परिस्थितियों में परिवार व्यवस्था को खड़ा करना अधिक महत्वपूर्ण है। परिवार व्यवस्था दो विचारधाराओं के बीच टकराती रहती है— 1. आधुनिक परिवार 2. परम्परागत परिवार। यह टकराव पहले भी था,आज भी है, और भविष्य में भी रहेगा। किन्तु इस टकराव का दुखद पक्ष यह है कि राज्य सम्पूर्ण परिवार व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए इस टकराव को प्रोत्साहित करता रहता है जिससे उसको कोई मजबूत चुनौती न मिले।

वर्तमान भारत में दो प्रकार से यह टकराव चल रहा है—1. युवा और वृद्ध 2. महिला और पुरुष। इन दोनों ही दिशाओं में परिवार और समाज में भी कुछ प्राकृतिक परिवर्तन आ रहे है। प्राचीन समय में युवाओं के विरुद्ध वृद्ध लोगों के पक्ष में तथा महिलाओं के विरुद्ध पुरुषों के पक्ष में परिवार व्यवस्था झुकी हुई थी क्योकि उस समय युवाओं की संख्या बुजुर्गो से तथा महिलाओं की पुरुषों से अपेक्षाकृत अधिक होती थी जो अब अपने आप लगभग विपरीत हो गई हैं। वर्तमान समय में इस झुकाव में स्वाभाविक परिवर्तन आया है और वृद्धों के विरुद्ध युवाओं में तथा पुरुषों के विरुद्ध महिलाओं में अच्छा परिवर्तन दिख रहा है। किन्तु यह भी साफ दिख रहा है कि भारत का कुछ धूर्त युवा इस परिर्वतन से असंतुष्ट दिखकर उसका स्वहित में लाभ उठाना चाहते हैं। युवा प्रोत्साहन के नाम पर परिवारवाद भी बढ़ रहा है। पूरे देश की राजनीति में ऐसा साफ देखा जा सकता है कि लालू प्रसाद,मुलायम सिंह, सोनिया गॉधी सहित अनेक राजनेता युवा शब्द का दुरुपयोग करके अपने हित साधने का प्रयास कर

रहे हैं। ये धूर्त लोग समाज में परम्परागत के विरुद्ध आधुनिकता का चोला पहनकर दुरुपयोग का लाभ उठाने का प्रयास करते है। ऐसा प्रयास करने वालों में न दल का भेद है न सिद्धांतों का और न ही उम्र का। ऐसा ही परिवर्तन प्राकृतिक रुप से महिला पुरुष के रुप में भी दिख रहा है। जनसंख्या के अनुपात में महिलाओं की संख्या घट रही है और उसके परिणाम स्वरुप पुरुषों के पक्ष में एकपक्षीय झुकाव अपने आप बदल रहा है। परिवारों में भी सामान्यतया पर्दा प्रथा घट रही है, विवाह की उम्र बढ़ रही है, विवाह में युवा बालक बलिकाओं की सहमति भी बढ़ रही है, तथा पारिवारिक मामलों में निर्णय करने में भी युवाओं या महिलाओं का हस्तक्षेप या परामर्श अधिक अनिवार्य होता जा रहा है। इस स्थिति से भारत का राजनेता तथा धुर्त युवक तथा महिलाएँ बहुत चिंतित है। राजनेताओं ने तो बाकायदा एक अभियान ही छेड़ दिया है कि महिलाओं की घटती हुई आबादी को एक राष्ट्रीय समस्या के रुप में स्थापित कर दिया जाये । दुर्भाग्य से धूर्त महिलाएँ भी इस प्रयत्न के पक्ष में खड़ी दिखती है।

यदि हम परम्परागत और आधुनिक परिवारों का आकलन करें तो कुल मिलाकर लगभग दो प्रतिशत परिवार ही ऐसे होंगे जो आधुनिक हैं अन्यथा 98 प्रतिशत अभी भी पारम्परिक परिवार व्यवस्था में ही चल रहे हैं। यद्यपि इनमें भी आंशिक सुधार हुआ है जो स्वाभाविक है। इन दो प्रतिशत आधुनिक परिवारों की महिलाओं ने स्वयं को 98 प्रतिशत महिलाओं का प्रतिनिधि घोषित कर दिया है और धूर्त राजनेताओं ने ऐसी महिलाओं के साथ तालमेल करके इन दो प्रतिशत महिलाओं को ही 98 प्रतिशत का प्रतिनिधि घोषित कर दिया है और ये दोनों मिलकर समाज में महिला सशक्तिकरण का एक काल्पनिक नारा उछाल रहे हैं। मैं स्पष्ट कर दूँ कि जिन देशों में परिवार व्यवस्था को अनिवार्य मान्यता नहीं है वहॉ ऐसे नारे का औचित्य हो सकता है। किन्तु भारत में अनिवार्य परिवार व्यवस्था को सामाजिक अनिवार्य मान्यता प्राप्त है और अपवाद छोड़कर शायद ही कोई ऐसी महिला या पुरुष हो जो किसी परिवार के स्वाभाविक सदस्य न हो । जब यह प्राकृतिक रुप से तय है कि प्रतिस्पर्धा में तीन पैर की दौड़ अनिवार्य है और उसमें भी यह शर्त लागू है कि उसमें स्त्री और पुरुष को एक साथ होना चाहिए तो कौन सशक्त हो और कौन कमजोर हो यह निर्णय दो दौड़ने वाले आपस में मिलकर करेंगे या बाहर के प्रतिस्पर्धी। मैं नहीं समझता कि दूसरे प्रतिस्पर्धियों को दूसरे परिवार के बारें में ऐसी चिंता करने का कोई औचित्य है लेकिन दुर्भाग्य है कि भारत में कुछ महिलाएँ और राजनेता मिलकर महिला सशक्तिकरण शब्द को हथियार के रुप में अपने राजनैतिक अखाड़े में प्रयोग कर रहे हैं। इन लोगों ने सब प्रकार के विपरीत कानून बना बना कर परिवारों को तोड़ने का कुचक्र रच रखा है। दूसरी ओर इन लोगों ने अपनी सुविधाओं के लिए सारे साधन अपने अखाड़े में ही जुटा कर रखे है। यदि ठीक से सर्वेक्षण किया जाये तो राजनीति में शामिल महिलाओं में इन दो प्रतिशत आधुनिक परिवारों का ही बाहुल्य मिलेगा। यदि परिवार संचालन को आधार बनाकर सर्वेक्षण करें तो परिवार तोड़ने में भी इन्हीं का बहुमत होगा। यदि आचरण का भी सर्वेक्षण करें तो उसमें भी ये पीछे नहीं मिलेंगे । इन्होने अन्य परिवारों को तो वैश्यावृत्ति बार बालाओं का नाच देखने तक की रोक लगा दी है किन्तु ये सब आपस में क्या क्या करते है और उनका क्या प्रतिशत है यह आम आदमी जानता है। अपनी असीमित सुविधा और अन्य परिवारों के लिए जेल खाना सरीखा कानून बनाकर रखना इनका हथियार है।

एक सीधा सा सिद्धांत है कि सभी वर्गो में अच्छे और बुरे लोगों का प्रतिशत लगभग एक समान होता है। अच्छाई और बुराई व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वभाव है वर्गगत होता ही नहीं। जो लोग इसे वर्ग के साथ जोड़ते है वे निश्चित रुप से धूर्त हैं और वे इस आधार पर स्वयं कुछ विशेष लाभ उठाना चाहते हैं। महिला आरक्षण तथा अन्य किसी भी प्रकार का आरक्षण चाहे वह जाति का हो या

धर्म का, सबका आधार यही स्वार्थ होता है। आरक्षण धूर्त सशक्तिकरण का एक ब्रम्हास्त्र सरीखा हथियार होता है, जो राजनेताओं के कंधे पर रखकर प्रयोग किया जाता है। आज पूरे देश में इस आरक्षण रुपी हथियार का प्रयोग्र करके ही समाज को गुलाम बनाया जा रहा है और अब तो धीरे धीरे इस हथियार का परिवार व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने के लिए भी उपयोग किया जा रहा है।

प्रश्न उठता है कि क्या हम परम्परागत परिवार व्यवस्था को चलने दें या आधुनिकता का मार्ग पकड़ें। मैं देख रहा हूँ कि जो परिवार आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ रहे है उन्हें आर्थिक सम्पन्नता और भौतिक सुख सुविधा बहुत तेजी से प्राप्त हो रही है किन्तु साथ–साथ उन परिवारों में आपसी सुख और सामंजस्य भी घट रहा है। यदि हम परम्परागत परिवारों को देखें तो उनमें संतोष है, सामंजस्य भी है किन्तु गरीबी और भौतिक सुविधाओं का अभाव अधिक दिख रहा है। मैं नहीं समझता कि भौतिक उन्नति और सामंजस्य में से क्या उचित है इसका निर्णय हम उस परिवार पर क्यों न छोड़ दें। हम समाज की ओर से अथवा सरकार की ओर से उस परिवार को क्यों बाध्य या प्रोत्साहित करें कि उसे किस दिशा में बढ़ना चाहिए। एक महिला या पुरुष आर्थिक लाभ के लिए किसी के साथ अनैतिक संबंध बनाता है और एक महिला या पुरुष अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए पैसा खर्च करता है और ऐसे दोनों लोग यदि आपस में संतुष्ट हैं तो किसी तीसरे को इसमें कष्ट क्यों होना चाहिए? क्यों न हम सारे निर्णय परिवार को स्वयं ही करने दें? यदि हमने परिवारों को स्वतंत्रता दे दी तो इसका समाज पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा तथा अन्ततोगत्वा राजनैतिक गुलामी से भी मुक्ति मिल जायेगी। यदि परेशानी होगी तो उन दो प्रतिशत परजीवी परिवारों को जो चारों तरफ से अपनी सुविधाएँ दूसरों की कीमत पर इक्ट्ठा करके समाज को धोखा दे रहे है। मैं अंतिम रुप से इस निष्कर्ष तक पहूँचा हूँ कि आधुनिक या परंम्परागत के बीच विवाद पैदा करने वाले संगठन परजीवी हैं, खुद कुछ करना नहीं चाहते और बिल्लियों के बीच बंदर के समान दोनों पक्षों की रोटी काट काट कर अपना पेट भरना चाहते है। हमें चाहिए कि हम ऐसे परजीवी बंदरों के प्रभाव में न आवें। महिला सशक्तिकरण युवा सशक्तिकरण जैसे भ्रामक और घातक विचारों के स्थान पर परिवार सशक्तिकरण का विचार प्रसार करें और पहले कदम के रुप में राज्य को मजबूर करे कि वह परिवारों के पारिवारिक विषयों में निर्णय करने की उन्हें स्वतंत्रता दे अर्थात् भारत में परिवार, संसद को मान्यता दी जायें।

कई लोग इस बात पर बहुत भिन्न विचार रखते है कि परिवार की परम्परागत व्यवस्था ठीक है अथवा आधुनिक। मैं समझता हूँ कि वर्तमान समय में परम्परागत परिवार व्यवस्था में भी व्यापक संशोधन की आवश्यकता है तथा आधुनिक परिवार व्यवस्था तो परम्परागत व्यवस्था से भी ज्यादा हानिकारक है भारत की वर्तमान खिचड़ी व्यवस्था आधुनिक परिवार व्यवस्था को बढ़ावा दे रही है तथा परम्परागत व्यवस्था को तोड़ रही है। मैं परम्परागत व्यवस्था के पक्ष में नही किन्तु मैं आधुनिक परिवार व्यवस्था को बढ़ावा देने के पक्ष में भी नहीं। मैं तो मानता हूँ कि भारत की वर्तमान परिवार व्यवस्था एक संक्रमण काल से गुजर रही है । इसे न परम्परागत के असफल सिद्धांत से चिपके रहना चाहिए और न ही आधुनिक की चाशनी में लपेट कर उसे विकृत करना चाहिए जैसा अभी वर्तमान राज्य व्यवस्था कर रही है। इस संक्रमण काल में जब तक कोई आदर्श स्थिति न दिखे तब तक आधुनिक या परम्परागत व्यवस्था का निर्णय प्रत्येक परिवार पर छोड़ देना चाहिए और परिवार की इस स्वतंत्रता में राज्य सहित किसी भी अन्य इकाई का हस्तक्षेप वर्जित होना चाहिए। वर्तमान समय में राज्य इस मामले में सबसे ज्यादा गड़बड़ कर रहा है। समाज का कर्तव्य है कि वह इस संबंध में पहल करते हुए राज्य को मजबूर करें कि वह परम्परागत और आधुनिक परिवार व्यवस्था के टकराव से स्वंय को दूर कर लें।

आदर्श परिवार व्यवस्था की रुपरेखा

समाज के सुचारु संचालन के लिए परिवार व्यवस्था आवश्यक है। परिवार सहजीवन की पहली पाठशाला है, जहॉ बालक समाज में संतुलित भूमिका की पहली ट्रेनिंग प्राप्त करता है। परिवार में ही रहकर बालक स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच की सीमा रेखा का ज्ञान और अनुभव प्राप्त करता है। परिवार व्यवस्था,समाज व्यवस्था,में सहायक है,बाधक नहीं। पश्चिम के देश परिवार व्यवस्था को अनावश्यक मानते हैं और साम्यवादी देश बाधक। दोनों ही परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता देने के विरुद्ध हैं। यद्यपि पश्चिम परिवार व्यवस्था को कानूनी मान्यता देता है किन्तु साम्यवाद उतनी भी नहीं देता। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संवैधानिक तथा कानूनी व्यवस्था में पंडित नेहरु तथा भीमराव अम्बेडकर का वर्चस्व रहा। दोनों ने मिलकर परिवार व्यवस्था के विरुद्ध षड़यंत्र रचा। संभव है कि पंड़ित नेहरु साम्यवाद , समाजवाद या पश्चिम के विचारों से प्रभावित होकर इस दिशा में गये हों । किन्तु यह स्पष्ट है कि डॉ0 अम्बेडकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इस दिशा में गये। डॉ0 अम्बेडकर का हर कदम राजनैतिक स्वार्थ से भरपूर था और उसके परिणामस्वरुप ही भारत की परिवार व्यवस्था,समाज व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने के रुपरेखा जान बूझकर बनाई गई।

पारम्परिक परिवार व्यवस्था में आंतरिक रुप से व्यक्ति के साथ अन्याय होता है। उसे उसकी मौलिक स्वतंत्रता से भी वंचित रखा जाता है। न तो परिवार के सदस्यों को सम्पत्ति के समान अधिकार प्राप्त होते है,न ही अभिव्यक्ति के। यहॉ तक की परिवार के प्रमुख के चयन में भी न योग्यता का कोई मापदण्ड रहता हैं न ही परिवार के अन्य सदस्यों की कोई भूमिका। कोई व्यक्ति परिवार में घुटन महसूस करके छोड़ना चाहे, तब भी उसे 25 तरह की कठिनाइयॉ झेलनी पड़ती हैं। महिला और युवा को परिवार में समान अधिकार प्राप्त नहीं होते। उन्हें कर्तव्य करने की तो बाध्यता है किन्तु अधिकार नहीं। दूसरी ओर आधुनिक परिवार व्यवस्था में व्यक्ति स्वातंत्र्य उच्श्रृंखलता तक चला जाता है। आधुनिक परिवार समाज व्यवस्था का पूरक न होकर शोषक बन जाता है। वह अपनी पारिवारिक भौतिक उन्नति समाज की कीमत पर करने का प्रयत्न करता है। जहॉ पारम्परिक परिवार व्यवस्था में सच बात कहने की भी स्वतंत्रता नहीं, वहीं आधुनिक परिवार व्यवस्था में असत्य अनावश्यक विवाद पैदा करने की भी स्वतंत्रता रहती है। पारम्परिक परिवार व्यवस्था अपने अंदर आवश्यक और उचित संशोधन के मार्ग भी अवरुद्ध रखती है। तो आधुनिक परिवार व्यवस्था,समाज व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयत्न करती रहती है तथा मिलजुलकर किसी निष्कर्ष तक कभी पहुॅचने ही नहीं देती।

पारम्परिक परिवार व्यवस्था ईश्वर के भय से चलती है। जबकि आधुनिक परिवार व्यवस्था न ईश्वर का भय मानती है,न कानून का और न ही समाज का। सभी धर्म गुरु स्वार्थवश पारम्परिक परिवार व्यवस्था को प्रोत्साहित करते रहते हैं, और किसी प्रकार के संशोधन या सुधार का विरोध करते है। उन्हें डर है कि पारम्परिक परिवार व्यवस्था में सुधार उनकी दुकानदारी और श्रद्धा पर चोट पहुचायेगा। मैंने अनुभव किया है कि बहुत अच्छे अच्छे समझदार धर्मगुरु भी परिवार व्यवस्था में किसी प्रकार के संशोधन के बिल्कुल विरुद्ध हैं। दूसरी ओर हर राजनेता चाहे वह किसी भी दल का क्यों न हो आधुनिक परिवार व्यवस्था के पक्ष में दिखता है क्योंकि आधुनिक परिवार व्यवस्था उनके हितों के अनुकुल है। यहॉ तक कि संघ परिवार अथवा इस्लाम भी परम्परागत परिवार व्यवस्था के पक्ष में ऑख मूंदकर खड़ा रहता है। अच्छे–अच्छे आर एस एस वाले भी पारम्परिक परिवार व्यवस्था के पक्ष में ऐसी ऐसी दकियानुसी दलिले पेश करते है कि उन पर दया आती है। जबकि राजनीति से जुड़े संघ परिवार या मुसलमान आधुनिक परिवार व्यवस्था के पक्ष में बोलने लगते हैं।

आदर्श परिवार व्यवस्था में परिवार का आंतरिक ढांचा लोकतांत्रिक, समाजपूरक और राज्य सहायक होना चाहिए, जबकि आज सभी मामलों में पूरी तरह विपरीत है। परिवार में प्रत्येक सदस्य को उसके मौलिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। अर्थात् उसे किसी परिस्थिति में जीने के अधिकार से

वंचित न किया जाये, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न रोकी जाये, सम्पत्ति से वंचित न किया जाये, तथा परिवार से विलग होना उसकी मौलिक स्वतंत्रता मानी जाये। सम्पूर्ण समर्पण का अर्थ गुलामी नहीं होता बल्कि सम्पूर्ण समर्पण का अर्थ सामुहिक सहमति होता है। परिवार में सम्पूर्ण समर्पण परिवार के प्रति होता है, व्यक्ति के प्रति नहीं। दुर्भाग्य से पारम्परिक परिवार व्यवस्था में सम्पूर्ण समर्पण का अर्थ अधिकार विहीन मान लिया गया, जो गलत था। इसका अर्थ यह है कि स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच अनुशासन की एक अस्पष्ट सीमा रेखा है, जो सबकी सामूहिक सहमति से ही बनाई जा सकती है। इसी तरह समाज व्यवस्था और परिवार व्यवस्था के बीच भी एक अदृश्य सीमा रेखा है जो सब परिवारों की सहमति से ही बनती है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की सामूहिक सहमति और समाज के प्रत्येक परिवार की सामूहिक सहमति से बनने वाली व्यवस्था ही आदर्श कहीं जा सकती है। भारत की संवैधानिक व्यवस्था में परिवार की एक स्पष्ट परिभाषा, उसके अधिकार तथा उसके दायित्व की साफ साफ शब्दों में विवेचना होना चाहिए थी जो नहीं है। परिवार को समाज के साथ तालमेल उसके अनुशासन का भाग्र होना चाहिए था। परिवार के अनुशासन से व्यक्ति को और ईश्वर ,राज्य तथा समाज के भय से परिवार को ठीक दिशा में चलना था। ईश्वर का भय लगभग समाप्त है। राज्य का भय भी सिर्फ शरीफ लोगों पर ही है,अपराधियों और धुर्तो से या तो राज्य का तालमेल है, या नियंत्रण नहीं है। समाज का भय या अनुशासन व्यक्ति और परिवारों पर अब भी कुछ है जिसे राज्य और आधुनिक परिवार मिलकर समाप्त करने के लिए जी जान से प्रयत्नशील हैं। परिवार में उसका कोई सदस्य मोबाइल लेकर चले या नहीं,प्रेम विवाह करे या नहीं इसका अनुशासन भी परिवार नहीं रख सकता। ऐसे ऐसे समाज तोड़क कानून बनाये जा रहे हैं। महिला और पुरुष के बीच दूरी घटे या बढ़े इसकी भी स्वतंत्रता परिवार को नहीं है। कोई परिवार अधिक लाभ के लिए अपने शरीर का दुरुपयोग करे या कोई परिवार शारीरिक भूख मिटाने के लिए अपना धन बर्बाद करे । इस संबंध में भी सरकार कानून बनाने से परहेज नहीं कर रही। यहॉ तक कि अब तो महाराष्ट्र सरकार किसी व्यक्ति या परिवार के सामाजिक बहिष्कार पर भी रोक लगाने का कानून बनाने जा रही है। समझ में नहीं आता कि ये सरकारें ऐसा गलत कार्य क्यों कर रही हैं?

आदर्श स्थिति में भारत को परिवारों का संघ होना चाहिए था जो या तो व्यक्तियों का संघ है या राज्यों का। नागरिकता परिवार की होनी चाहिए थी किन्तु परिवार की न होकर नागरिकता देश की मान ली गई। नई व्यवस्था के अनुसार परिवार की एक लोकतांत्रिक परिभाषा बननी चाहिए थी, जिसमें व्यक्ति को परिवार के अंदर मौलिक अधिकार प्राप्त होते और परिवार अपराध नियंत्रण में राज्य का सहायक होता। एक आदर्श परिभाषा बन सकती है जिसके अनुसार संयुक्त सम्पत्ति और संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने के लिए सहमत व्यक्तियों का समूह परिवार माना जाये। इसका अर्थ हुआ कि परिवार की सम्पत्ति सबकी सामूहिक होगी किन्तु अलग होते ही उसकी व्यक्तिगत हो जायेगी और दूसरे परिवार में मिलते समय उसके साथ जुड जायेगी। इसी तरह परिवार में लोकतांत्रिक तरीके से मुखिया का चयन होगा और मुखिया के अधिकार परिवार द्वारा आपसी सहमति से तय किये जायेंगे। परिवार का कोई सदस्य यदि अपराध करता है तो ऐसा अपराध भी तब तक सामूहिक जिम्मेदारी मानी जायेगी जब तक परिवार उस अपराधी को नियंत्रित करने का कोई ठोस विश्वास न दिला दे। इस तरह या कोई और आदर्श परिवार व्यवस्था का ढ़ांचा बनना चाहिए। किन्तु यह नहीं हो सकता कि वर्तमान अलोकतांत्रिक अन्यायी,पारम्परिक परिवार व्यवस्था तथा उच्श्रृंखल ,अनुशासनहीन,आधुनिक परिवार व्यवस्था को इसी तरह चलने की छूट दी जाये । मैं जानता हूँ कि पारम्परिक परिवार व्यवस्था को धर्मगुरुओं तथा साम्प्रदायिक तत्वों का सीमा रहित वरदहस्त प्राप्त है। दूसरी ओर आधुनिक परिवार व्यवस्था को भी परिवार तोड़क राज्य व्यवस्था का सीमा रहित वरदहस्त

प्राप्त है। तीसरी ओर मैं जो प्रस्ताव दे रहा हूँ उसमें जटिलता भी है तथा बोझिल भी है किन्तु यह उचित नहीं होगा कि जटिल और बोझिल कहकर किसी प्रस्ताव को पारम्परिक या आधुनिक परिवार व्यवस्था के वर्तमान संचालन की स्वीकृति के रुप में प्रस्तुत किया जाये। विचार विमर्श होने चाहिए। संशोधन के मार्ग खुले रहने चाहिए। संशोधन में समाज की निर्णायक भुमिका होनी चाहिए और उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि ऐसे विचार विमर्श में राज्य की सीमित भूमिका होनी चाहिए निर्णायक नहीं।

हम समझते है कि हम चाहे कितना भी विचार कर लें किन्तु राज्य से जुडे लोग हमें गुलाम से अधिक अन्य कुछ समझने को तैयार नहीं हैं। इसलिए हमारी पहली लड़ाई यहीं से शुरु होती है कि हम राज्य से परिवार की मुक्ति का संघर्ष शुरु करें।

पिछले दिनों इस संबंध में मैंने तीन लेख लिखे मैं जानता हूँ कि सामान्य व्यक्ति के लिए इन गम्भीर विषयों पर विचार मंथन कठिन कार्य है। मैं अपेक्षा करता हूँ कि ऐसे लोग सिर्फ इस साधारण सी बात पर एक साथ खड़े हो सकते हैं कि परिवारों के क्या अधिकार हो, क्या परिभाषा हो, कैसी संरचना हो किसे संवैधानिक मान्यता दी जाये इस बात पर राज्य और समाज के बीच सार्थक संवाद हो,द्विपक्षीय हो,एकपक्षीय नहीं। मैं जानता हूँ कि ऐसी बात उठते ही अनेक लोग यह समझ जायेंगे कि परिवारों को संवैधानिक मान्यता मिलने से हिन्दू कोड बिल सरीखे कलंकित कानून अपने आप समाप्त हो जायेंगे। यही नही विवाह की उम्र तलाक के कानून परिवार की सम्पत्ति में महिलाओं की मुकदमें बाजी जैसे कानून अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

यह भी स्पष्ट है कि इन सब समस्याओं के जन्मदाता अम्बेडकर की वर्तमान नायक की छवि भी खलनायक में बदल जायेगी। आज तो यहॉ तक दिख रहा है कि सत्ता प्राप्त होते ही नरेन्द्र मोदी, संघ परिवार जैसे लोगों की भी भीमराव अम्बेडकर को नायक सिद्ध करना मजबूरी बन गई है। लेकिन हमारे सामान्य साथियों को ऐसे प्रचार से दूर रहना चाहिए। हमारे जो साथी सामान्य स्तर से उपर के है वे मेरे तीनों लेखों पर प्रश्न करें, सुझाव दें, विकल्प दें और साथ में एक बहस छेडे जिससे परिवार व्यवस्था का एक अच्छा ढाचा प्रस्तुत किया जा सके। व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी एक आदर्श परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दिलाने के लिए 2017 से एक जनमत जागरण अभियान शुरु कर रही है। हमारे देश भर के सामान्य तथा विशेष साथियों से निवेदन है कि वे यथा शक्ति ऐसे अभियानों को सफल बनाने में स्वयं को जोडने की पहल करें। जो साथी इस विचार विमर्श अथवा अभियान से प्रत्यक्ष जुडना चाहते है वे हमारे दिल्ली कार्यालय में फोन या पत्र से सम्पर्क कर सकते है। दिल्ली का पता है –व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी, राजपूत निवास, ए–20 प्रथम तल राइट साइड, दूसरा 60 फुटा रोड, मोलडबंद एक्सटेंशन बदरपुर नई दिल्ली–110044,

Email-vyavasthapak@rediffmail.com, website- kaashindia.com, फोन न0– टीकाराम देवरानी–**8826290511**

फेसबुक पर डाली गई तात्कालिक प्रतिक्रियाएँ

सोनिया राहुल को न्यायालय का नोटिस और हंगामा

पिछले कई दिनों से भारतीय राजनीति में सोनिया राहूल को दिये गए न्यायालयीन समन पर राजनैतिक हंगामा मचा हुआ है। मुझे पहले तो ऐसा लगता था कि सोनिया और राहुल से कोई गंभीर गलती नही हुई है किन्तु जिस तरह ये लोग हंगामा कर रहे है उससे संदेह होता है कि कुछ न कुछ गंभीर मामला अवश्य छिपा है।

जब से भारत स्वतंत्र हुआ तभी से भारत सरकार, कांग्रेस पार्टी और नेहरु परिवार एकाकार बनकर रहे। तीनों में कभी कोई भेद नही रहा,तीनों एक दूसरे के पूरक रहे। स्वतंत्रता के पूर्व पंडित नेहरु ने नेशनल हेराल्ड नामक एक अखबार निकाला था और उसके स्वामित्व के लिए एक सार्वजनिक संस्था बना दी थी। यह अखबार भी कांग्रेस पार्टी का ही था और स्वतंत्रता के बाद चूंकि कांग्रेस पार्टी ही नेहरु खान्दान की बन गई थी इसलिए नेशनल हेराल्ड की संस्था भी पूरी तरह इस परिवार के स्वामित्व की बन गई। नेहरु परिवार एक तरफ तो हर संस्था पर अपनी मिल्कियत रखता था, तो दूसरी ओर वह अलग अलग संस्थाओं का लोकतांत्रिक स्वरुप भी बनाये रखता था । इसी क्रम के अंतर्गत नेशनल हेराल्ड, भारत सरकार, कांग्रेस पार्टी और नेहरु परिवार अलग अलग नाम से संचालित होते हुए भी एक ही परिवार के स्वामित्व में थे। समय समय पर भारत सरकार नेशनल हेराल्ड को अनेक प्रकार की वैधानिक अवैधानिक सहायता भी देती रहती थी। और इस तरह उसकी सम्पत्ति बढ़ते बढ़ते एक दो हजार करोड़ रुपया तक पहुॅच गई। नेशनल हेराल्ड अखबार की बिक्री बहुत कम थी, इतनी कम कि एक बार देश के एक ख्याति प्राप्त व्यक्ति को नेशनल हेराल्ड के अधिकारी ने बिकने वाली प्रतियों की संख्या 90 बतायी थी और सुनने वाले अधिकारी ने 90 का अर्थ 90 हजार समझा था। फिर भी नेशनल हेराल्ड की सम्पत्ति बढ़ती चली जाती थी। बहुत बाद में जब सरकारें बदलीं तब नेशनल हेराल्ड अखबार घाटे में चलने लगा। ऐसे ही समय में सोनिया राहुल ने मिलकर एक नई कम्पनी बनाई और घुमा फिराकर अखबार की सम्पत्ति जो एक दो हजार करोड़ की बतायी जाती है उसका स्वामित्व नई बनी कम्पनी के नाम कर दिया। मैं समझता हूॅ कि इस हेरा फेरी में यदि कानून का कोई उल्लंघन हुआ होगा तो वह कानून से निपटेगा। लेकिन इस पूरी हेरा फेरी में अनैतिक कुछ भी नही था क्योंकि प्रारंभ से ही सरकार पार्टी और अखबार एक ही परिवार की सम्पत्ति थे। तो यदि उस परिवार ने उसका नाम बदल लिया तो उसमें अनैतिक क्या है। न्यायालय ने इस हेराफेरी को गैर कानूनी समझकर जॉच कराने का निर्णय किया। स्वाभाविक है कि न्यायालय के निर्णय से सोनिया गॉधी ,राहुल गॉधी के परिवार और उनके सहायक दुखी हुए। यह बात सच है कि न्यायालयीन कार्यवाही में सिर्फ सुब्रहम्णयम् स्वामी का ही हाथ था और वह कार्यवाही भी नई सरकार आने के बहुत पहले ही हो गई थी तथा यह भी स्पष्ट है कि इस कार्यवाही में भाजपा या नरेन्द्र मोदी का कोई हाथ नही था। किसी अन्य का हाथ होना संभव भी नही था क्योंकि भाजपा वाले भी किसी न किसी रुप में अपने संगठनों या संस्थाओं को ऐसी वैधानिक या अवैधानिक सहायता करते रहते है। यह बात जानते हुए भी कि इस न्यायिक प्रकरण में किसी अन्य का कोई हाथ नही है, नेहरु परिवार और उनके गिरोह के सब लोगों ने देश भर में हल्ला मचाना शुरु कर दिया। संसद भी ठप कर दी गई। आन्दोलन शुरु हो गया और यह प्रचारित किया जाने लगा कि नई सरकार जान बूझकर इस मामले को तुल दे रही है, जबकि यह आरोप सरासर और शत्प्रतिशत गलत है। न्यायालय की कार्यवाही शुरु करने का आदेश होते ही सोनिया जी ने यह टिप्पणी की कि मैं इन्दिरा गॉधी की बहू हूॅ और किसी से नही डरूॅगी। इसका अर्थ हुआ कि इन्दिरा जी ने जिस तरह न्यायिक फैसले तक से डरना नही सीखा था तो सोनिया अब क्यों डरेगी। राहूल गॉधी ने भी आवेश में आकर कुछ ऐसे ही टिप्पणी की। सच्चाई यह है कि सोनिया गॉधी, राहूल गॉधी और उनके अन्य सभी समर्थको को यह पूरा विश्वास है कि भारत भावना प्रधान है। उसने ऐसे ही अनावश्यक हल्ले के प्रभाव में आकर इन्दिरा जी को पुनः सत्ता दिलवा दी थी और उसी रास्ते पर चलकर यह समूह भी पुनः सत्ता प्राप्त कर सकता है। भविष्य में क्या होगा यह तो पता नही,न्यायालय क्या करेगा यह भी पता नही। सोनिया जी जानती है कि आन्दोलन से नुकसान कुछ नही होगा, यदि होगा तो फायदा ही होगा। यदि न्यायालय ने सोनिया राहुल को राहत दे दी तो इन्हें सत्ता की ओर बढ़ने में बहुत तेज मद्द मिलेगी और यदि राहत नही दी तब भी नुकसान कुछ नही होना है क्योंकि कोई भ्रष्टाचार तो हुआ नही है। फिर भी मैं महसूस करता हूॅ कि सन् 75 के भारतीय लोकतंत्र और 2015 के भारतीय लोकतंत्र में कुछ न कुछ फर्क अवश्य आया है। कही ऐसा न हो कि एक बार सफलता दे चुका गलत मार्ग इस बार उल्टा पड़ जाये। मेरी इच्छा है कि भारत की जनता यह सिद्ध करे कि काठ की हाड़ी दुबारा आग पर चढ़ाना संभव नही है।

भारतीय संसद और भारत पाक संबंध

मैं लम्बे समय से मानता रहा हूँ कि संसद में विपक्ष की भूमिका अलग होती है और विरोधी की अलग। यदि विपक्ष विरोधी की भूमिका में आ जाये तो लोकतंत्र विकृत हो जाता है। दुर्भाग्य से भारत में वर्तमान स्थिति कुछ ऐसी ही है अर्थात् कांग्रेस पार्टी विपक्ष में न होकर विरोधी की भूमिका में आ गई है। वैसे तो पिछले 15–20 वर्षो से जो भी सरकार बनी उसे कभी आराम से काम नही करने दिया गया। अटलविहारी बाजपेयी जो भी काम करना चाहते थे उसमें संघ परिवार आंतरिक रुप से कुछ न कुछ अड़ंगे लगाता ही था। मनमोहन सिंह जब पहले कार्यकाल में प्रधानमंत्री थे तो साम्यवादी दल उन्हें पग पग पर परेशान करता था और दूसरे कार्यकाल में जब साम्यवादियों से पिंड छूटा तो सोनिया जी उन्हें परेशान करने लगीं। अब नरेन्द्र मोदी आये हैं तो उन्हें भी संघ परिवार आराम से काम नहीं करने दे रहा। कांग्रेस पार्टी तो स्वाभाविक रुप से विरोधी है ही। जब भी नरेन्द्र मोदी पाकिस्तान जैसे पडोसी के साथ कुछ अच्छे संबंध की बात शुरु करते है त्यो ही युद्ध उन्मादी तत्व अनेक प्रकार के अडंगे डालना शुरु कर देते हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर समस्या कोई मुद्दा है ही नहीं। पाकिस्तान विस्तारवाद के उद्देश्य से कश्मीर में हस्तक्षेप नहीं कर रहा। बल्कि वह तो अपने उग्रवादी तत्वों को संतुष्ट करने के लिए कश्मीर में कुछ सक्रियता का नाटक करता है। यह पाकिस्तान सरकार की मजबूरी है इच्छा नहीं। पाकिस्तान सरकार भी जानती है कि पाकिस्तान की सेना में युद्ध उन्मादी तत्वों का बहुत बड़ा हिस्सा शामिल है। दूसरी ओर नागरिकों में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है । ऐसी परिस्थिति में पाकिस्तान सरकार के संकट को न समझकर उसे शत्रु की श्रेणी में रखना बिल्कुल उचित नहीं है। विशेषकर उस परिस्थिति में जब भारत जानता है कि पाकिस्तान सरकार अपने ही आतंकवादियों से प्रत्यक्ष टकराव में फंसी है। इस बारे में मैं स्पष्ट हूँ कि कश्मीर समस्या भारत पाकिस्तान के बीच की समस्या न होकर विश्व इस्लामिक विस्तारवाद की समस्या है और पाकिस्तान उस विश्व इस्लामिक कट्टरवाद का एक मजबूत सिपाही मात्र है।

पूरी दुनिया इस्लामिक कट्टरवाद को शांति के लिए पहला खतरा मानकर चल रही है। अमेरिका के राष्ट्रपति पद के एक उम्मीदवार ने खुलकर कहॉ कि अमेरिका में मुसलमानों के प्रवेश के प्रति अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए। वहॉ के राष्ट्रपति ओबामा या कुछ अन्य लोगों ने शालीनता वश भले ही इस कथन से किनारा कर लिया हो किन्तु यह सच है कि इस्लाम के प्रति दुनिया भर के शांतिप्रिय लोगों का मोहभंग हो रहा है। इसका अर्थ हुआ कि मुस्लिम देश शांति के लिए खतरा नही है बल्कि इस्लामिक कट्टरवाद ही विश्व शांति के लिए खतरा है। यह भी सही है कि दुनिया में मुसलमानों की संख्या इतनी कम नहीं है कि उन्हें बिल्कुल अलग थलग किया जा सके, और इसलिए दुनिया के मुसलमानों में शांतिप्रिय और युद्ध उन्मादी का विभाजन करना ही एक मात्र मार्ग है और इसलिए भारत को भी इसी आधार पर आगे बढ़ना चाहिए। वर्तमान समय में पाकिस्तान युद्ध उन्माद की दिशा में बढ़ने की स्थिति में है ही नहीं। पाकिस्तान की स्थिति तो आज इतनी खराब है कि यदि आज भारत अपनी सीमाएँ खोल दे तो पाकिस्तान की पूरी आबादी भारत में चली आएगी और यदि भारत पाकिस्तान जाने के लिए छूट दे दे तो कश्मीर का भी कोई मुसलमान पाकिस्तान नहीं जाना चाहेगा। तो क्या भारत के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह पाकिस्तान के साथ अधिकतम शालीनता का व्यवहार करे। नरेन्द्र मोदी सरकार ने आने के बाद पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के साथ वार्ता की एक अच्छी शुरुवात की थी लेकिन थोडे ही दिनों के बाद हमारे भारत के युद्ध उन्मादी हिन्दूओं के प्रभाव में आकर उन्होने एकाएक मार्ग बदल लिया। जल्दी ही या तो उन्हें कुछ समझ

आयी या विश्व परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर किया, और उन्होने फिर से वार्ता शुरु कर दी। दुनिया जानती है कि युद्ध प्रिय भाषा न कभी भारत की रही है और न हिन्दुत्व की। हिन्दू या भारत अत्याचार सह सकता है परन्तु कर नही सकता। इसी तरह वह सिकुड सकता है किन्तु विस्तार उसकी कभी प्राथमिकता नहीं रही। वह सुरक्षा के लिए कभी आक्रमण भले ही कर दे किन्तु वह सुरक्षा के नाम पर कभी आक्रमण नही करता । भारत विश्व व्यवस्था के समक्ष पारदर्शी आचरण करता है, मनमानी व्यवस्था नहीं। जीतते हुए कश्मीर को संयुक्त राष्ट्र में ले जाना भले ही भारत के उन्मादी लोगों की नजर में भूल माना जाये किन्तु वह भारत पर अत्याचार का कलंक तो नहीं है। भारत और हिन्दुत्व का यह गुण भारत की एक थाती है और इसे मुट्ठी भर युद्ध उन्मादियों के प्रभाव में आकर नहीं गंवाया जा सकता । मैं देख रहा हूॅ कि यदा कदा आमीर खान, शाहरुख खान सरीखे लोग कुछ गलत भी बोल जाते हैं लेकिन भारत का आम जनमानस ऐसी गलतियों को किनारे करके आगे बढ़ जाता है। अभी कुछ दिन पहले ही कई लोगों ने भारत में भय का वातावरण सिद्ध करने का झूठा नाटक किया किन्तु आप देख रहे है कि महिने डेढ़ महिने में ही वे सारे लोग अलग थलग पड़ गये। पिछले दो तीन महिनों से कुछ युद्ध उम्मादी हिन्दू भी युद्ध उन्मादी मुसलमानों की भाषा बोलने लगे थे। वे भी अब कमजोर पड़ रहे है क्योंकि शांति की भाषा में जो ताकत है, वह चुनौती की भाषा में नहीं है, टकराव की भाषा में भी नही है और युद्ध की भाषा में तो है ही नहीं। मैं समझता हूॅ कि भारत सरकार पाकिस्तान के साथ शांति वार्ता करके बिल्कुल ठीक दिशा में बढ़ रही है। मैं यह भी देख रहा हूॅ कि कश्मीर सहित भारत का मुसलमान धीरे धीरे आतंकवाद के विरुद्ध आवाज उठा रहा है। किन्तु मैं यह देखकर कभी कभी दुखी हो जाता हूॅ कि शांति की बात के विरुद्ध पाकिस्तान के उग्रवादी और भारत के शिवसेना संघ परिवार के लोग एक समान भाषा बोलने लग जाते है। यहॉ तक कि कांग्रेस पार्टी के लोग भी विपक्ष की भूमिका छोड़कर विरोधी की भूमिका में आ जाते है और संसद में ऐसे ऐसे प्रश्न करते है जिनसे आभाष होता है कि भारत किसी तीसरे देश के दबाव में शांति वार्ता कर रहा है अथवा भारत अपने स्टैण्ड से पीछे हट रहा है। यदि भारत पाकिस्तान के साथ शांति के लिए कुछ छोटी मोटी कुरवानी भी देने को तैयार हो जाये तो हमें वर्तमान भारत सरकार पर पूरा भरोसा करना चाहिए। युद्ध और शांति के बीच शांति अधिक महत्वपूर्ण होती है।

खान बन्धुओं द्वारा निर्मित फिल्मों का विरोध

पिछले दो तीन दिनों से पूरे देश में साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने खान बन्धुओं द्वारा बनाई गई फिल्म दिलवाले या बाजीराव मस्तानी के प्रदर्शन का विरोध किया है। आरोप है कि खान बन्धुओं ने देश में सहनशीलता का वातावरण बिगड़ने की चर्चा की थी। स्पष्ट है कि इन फिल्मों का विरोध वास्तविक प्रदर्शन को न लेकर सिर्फ खान बन्धुओं की टिप्पणियों को आधार बनाकर किया जा रहा है। प्रश्न उठता है कि क्या टिप्पणियॉ गलत थीं या सिर्फ मुसलमान होने के कारण ही इन फिल्मों का विरोध हो रहा है।

स्वतंत्रता के बाद नरेन्द्र मोदी के आने के पूर्व तक साम्प्रदायिक मुसलमानों और स्वार्थी राजनेताओं ने मिलकर राजनैतिक साठ गांठ कर ली और आम शांतिप्रिय हिन्दुओं को दोयम दर्जे का नागरिक बनाकर रखा। उन्हें कभी भी समानता के अधिकार नहीं दिये गये। यहॉ तक कि इन मिले जुले साम्प्रदायिक तत्वों ने सारी दुनिया में अपने को धर्मनिरपेक्ष तक घोषित कर दिया। अब नई सरकार आने के बाद धर्म. निरपेक्ष हिन्दुओं में आंशिक रुप से समानता का भाव जगना शुरु हुआ है और साम्प्रदायिक हिन्दुओं में मुसलमानों से बदला लेने का भाव मजबूत हुआ है। फिल्मों के विरुद्ध प्रदर्शन इसी बदला लेने की भावना का परिणाम है किन्तु इस कार्य में खान बन्धुओं से भी चूक हुई है। वे भूल गये कि अब भारत में पिछली मुस्लिम समर्थक साम्प्रदायिक सरकार नहीं है।

स्पष्ट है कि जब हिन्दुओं को एकतरफा दबाया जा रहा था तब बहुत कम मुसलमानों ने उसका विरोध किया। अधिकांश मुसलमान या तो चुप रहे, या लाभ उठाते रहे। बदली परिस्थितियों में खान बन्धुओं को सतर्क और सावधान रहना चाहिए था। किसी भी हिन्दू या मुसलमान के लिए तीन तरह की परिस्थितियॉ होती है 1 निरपेक्ष 2 तटस्थ 3 परिस्थितियों से लाभ उठाना। हिन्दू हो या मुसलमान किसी भी मामले में निरपेक्ष रहना एक अलग विषय है

किन्तु चाहे हिन्दू या मुसलमान किसी भी मामले में निर्भीक होकर सत्य का साथ देना अलग विषय है। सत्य का साथ देना बहुत कठिन काम है और हमेशा संकट में डालता है किन्तु निर्लिप्त रहना सबसे अधिक सुविधाजनक कार्य होता है। परिस्थितियों का लाभ उठाने वाले साम्प्रदायिक तत्व माने जाते हैं जो परिस्थिति बदलने के बाद नुकसान उठाते हैं। जिन खान बन्धुओं की फिल्मों की चर्चा हो रही है उन लोगों ने पिछले वर्षो में कभी तटस्थ की भूमिका अदा नहीं की। वे या तो निर्लिप्त रहे या आंशिक रुप से साम्प्रदायिक मुसलमानों की ओर झुके। यह बात सच है कि इन लोगों ने आमतौर पर मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित नहीं किया। किन्तु साथ ही यह बात भी सच है कि इन्होने 67 वर्षो में कभी राजनेता साम्प्रदायिक मुसलमान गठजोड़ का विरोध भी नही किया। प्रश्न उठता है कि आज जब सरकार तटस्थ भाव से काम कर रही है तथा साम्प्रदायिक हिन्दू बदला लेने के प्रयत्न में सक्रिय हैं तो इन निर्लिप्त लोगों को इस विवाद में क्यों पड़ना चाहिए था? 67 वर्षो तक जब हिन्दू एकपक्षीय रुप से दबाया जा रहा था तब आप चुप रहे और सिर्फ डेढ़ वर्ष में आपको सारे अत्याचार दिखने लगे, यह सोच आपके विषय में संदेह पैदा करती है। क्या कभी इन फिल्मकारों ने आजमखान सरीखे जहरीले लोगों का खुलकर विरोध किया और यदि नहीं किया तो भारत का शांतिप्रिय हिन्दू आपके पक्ष में क्यों खड़ा हो? क्या कभी आपने कश्मीरी पण्डितों पर हुए अत्याचारों के खिलाफ कोई आवाज उठायी? यही कारण है कि आज साम्प्रदायिक हिन्दुओं द्वारा अत्याचार करने के बाद भी आम हिन्दु तटस्थ भाव से न देखकर निर्लिप्त भाव से देख रहा है। मैं समझता हूॅ कि यह स्थिति अच्छी नहीं है और गृह युद्ध की ओर ढकेल सकती है किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या गृहयुद्ध को टालना सिर्फ हिन्दुओं की ही जिम्मेदारी है? क्या यह उचित नही होगा कि सभी शांतिप्रिय हिन्दू और मुसलमान एक साथ मिलकर इस जिम्मेदारी को उठावें। आज जब मुसलमानों का एक बड़ा समूह तटस्थ भूमिका में सामने आ रहा है तो हमारे खान बन्धुओं को असहिष्णु वातावरण कहॉ से दिखने लग गया? अत्याचार का प्रतिरोध करना असहिष्णुता नहीं कहनी चाहिए बल्कि मजबूरी कहनी चाहिए। हमारे खान बंधुओं ने अब तक फिल्मों में हिन्दुओं की सामाजिक गलतियों पर प्रश्न उठाकर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। अच्छा होता कि वे मुसलमानों के तीन तलाक या बहुपत्नि प्रथा जैसी महिला उत्पीड़न की घटनाओं पर भी कोई फिल्म बनाते। यदि ऐसा होता तो खान बन्धुओं की छवि एक तटस्थ नागरिक के रुप में हुई होती। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हमारे ये मित्र पाकिस्तान की बार बार चर्चा क्यों करते है। इन्हें भी यह पता है कि यदि भारत अपनी सीमायें खोल दे तो सारे पाकिस्तानी नागरिक भारत में आ जायेंगे और यदि पाकिस्तान आहवान भी करे तो भारत का कोई नागरिक पाकिस्तान नहीं जाना चाहेगा। यहॉ तक की कश्मीर में जो पाकिस्तानी झण्डा फहराते है वे भी पाकिस्तान जाने को तैयार नही है। ऐसी स्थिति में यदि कोई पाकिस्तान की चर्चा करे तो उसकी नीयत पर संदेह स्वाभाविक है।

मैं उम्मीद करता हूॅ कि जो लोग पिछले बहुत वर्षो से तटस्थ रहे है उन्हें तटस्थ भाव से हिन्दू या मुसलमान के पक्ष विपक्ष में बोलने में कोई खतरा न तब था न अब है। मुझे तो आज तक किसी भी पक्ष से न कभी धमकी मिली न कभी विरोध हुआ। किन्तु जो लोग निर्लिप्त रहे हैं उन मुसलमानों को अब भी या तो निर्लिप्त रहना चाहिए अथवा साम्प्रदायिक मुसलमानों के साथ दूरी बनाकर रखनी चाहिए। वातावरण बदला है और हो सकता है कि पांच दस वर्ष में फिर से बदल जावे क्योंकि राजनैतिक वातावरण हमेशा अनिश्चित होता है किन्तु यदि राजनैतिकता से निरपेक्ष रहकर साम्प्रदायिक तत्वों से दूरी बनायी जाये तो कभी किसी को कोई दिक्कत नहीं आयेगी। हमें हर हाल में गृह युद्ध से बचना ही होगा और उसका सिर्फ एक तरीका है कि शांतिप्रिय मुसलमानों के प्रति अत्याचार पर शांतिप्रिय हिन्दू आवाज उठावें तथा शांतिप्रिय हिन्दुओं पर अत्याचार के खिलाफ शांतिप्रिय मुसलमान आवाज उठावें। शांतिप्रिय हिन्दू तो ऐसा कर रहे है, शांतिप्रिय मुसलमानों में ऐसा करने की अब तक कमी रही है, अब यद्यपि ऐसे मुसलमानों की संख्या लगातार बढ रही है और हम उम्मीद करते है कि हमारे खान बन्धु सरीखे लोग भी इस कार्य में पीछे नहीं रहेंगे।नरेन्द्र मोदी सरकार की चाहे हर मामले पर मुसलमान समीक्षा या आलोचना या विरोध भी करे तो कोई समस्या नहीं है किन्तु धार्मिक मामलों में कुछ बोलने के पूर्व सतर्कता बरतनी चाहिए। यह स्पष्ट है कि किसी मुसलमान को भी स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता पूर्वक अपनी बात रखने का समान अधिकार है। किन्तु यह भी सच है कि 67 वर्षो तक जिन लोगों ने अपना कर्तव्य भूलकर सिर्फ अधिकारों का आनंद उठाया वे यदि दो चार वर्ष कर्तव्य करना सीख ले तो कोई बुरी बात नहीं होगी।

अरविंद केजरीवाल की राजनैतिक समीक्षा

बहुत वर्षो के बाद मुझे इतना दुख हुआ,व्यक्तिगत रुप से कष्ट पहुॅचा। मैं लम्बे समय से यह मानता रहा हूॅ, बल्कि गर्व करता रहा हूॅ, कि मैं किसी व्यक्ति के गुण अवगुण की पहचान अन्य लोगों की

अपेक्षा जल्दी और निश्चित रुप से कर पाता हूॅ। मैं यह भी मानता रहा हूॅ कि मैं आसानी से ठगा नहीं जाता। पॉच सात वर्ष पूर्व ही मैंने तेरह ऐसे लोगों की सूची प्रकाशित की थी जिन्हें मैं अच्छे राजनीतिज्ञ मानता था। साथ ही मैंने तेरह ऐसे लोगों की भी सूची प्रकाशित की थी जिन्हें मैं राजनीति में अच्छा नहीं मानता रहा। मुझे गर्व था कि इतने वर्षो बाद भी मेरी वह सूची यथावत् है और अब तक उसमें किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं पड़ी है। उसी समय मैंने यह भी घोषणा की थी कि वर्तमान समय में प्रधानमंत्री की योग्यता के सिर्फ चार लोग दिखते है 1 मनमोहन सिंह 2 नीतिश कुमार 3 अरविंद केजरीवाल 4 नरेन्द्र मोदी। इन चारों का क्रम भी मैंने इसी प्रकार घोषित किया था। मैंने यह भी लिखा था कि भारतीय राजनीति में राहुल गॉधी सबसे ज्यादा अयोग्य प्रधानमंत्री सिद्ध होंगे। मैं कई वर्षो बाद होने वाले चुनावों में भी अपनी बात पर कायम था और आज भी कायम हूॅ।

जिन तेरह अच्छे लोगों की और तेरह कमजोर लोगों की सूची मैंने बनाई थी उसमें से अरविंद केजरीवाल को छोड़कर मैं किसी को भी व्यक्तिगत रुप से नही जानता था। उनके राजनैतिक क्रियाकलाप देखकर ही मैंने उनकी योग्यता का आभाष किया था। अरविंद केजरीवाल अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिनके साथ मिलकर दिल्ली में मैंने स्वराज्य का भी काम किया और दिल्ली से वापस लौटने के बाद भी मैं उनके साथ निरंतर व्यक्तिगत सम्पर्क में रहा। यहॉ तक कि मैं और अरविंद केजरीवाल जी कई दिन एक ही कमरे में अकेले सोते भी थे। मैं पूरी तरह आश्वस्त था कि चाहे अन्य किसी के विषय में मेरा आकलन भले ही गलत हो जाये किन्तु अरविंद केजरीवाल जी के विषय में गलत नहीं होगा। मैं राजनीति पूरी तरह छोड़ चुका था और चुनाव में किसी को भी सहायता या विरोध करना न उचित था न संभव । मैं जिनके पक्ष में था उनके लिए केवल ईश्वर से प्रार्थना ही करता था। किन्तु अरविंद केजरीवाल जी के विषय में मुझे पूरा विश्वास था कि वे स्वराज्य की लाइन पर चलेंगे। मैंने अपना स्वभाव छोड़कर भी वाराणसी के चुनाव में अरविंद केजरीवाल जी की भरपूर सहायता की। मैं हार्दिक रुप से यह चाहता था कि नरेन्द्र मोदी प्रधानमंत्री बनें। किन्तु यह चाहते हुए भी मैंने मोह में पड़कर या अतिविश्वास में होकर बनारस में उनकी सहायता की। पहली बार जब अरविंद केजरीवाल जी मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने जो कुछ किया उससे मेरा विश्वास और बढा और मैं हदय से चाहता था कि वे दूबारा दिल्ली के मुख्यमंत्री बनें। किन्तु इस बार मुख्यमंत्री बनने के बाद मुझे उनके विषय में अपने निष्कर्षो पर संदेह पैदा हुआ।

मैं समझता हूॅ कि प्रधानमंत्री बनने के लिए पॉच अनिवार्य योग्यताएॅ आवश्यक होती है––

1 ईमानदारी
2 लोकतंत्र पर विश्वास
3 शालीनता
4 समझदारी
5 कठोर परिश्रम

अब मनमोहन सिंह इस दौर से बाहर है इसलिए तीन पर ही समीक्षा की जा सकती है। नीतिश कुमार में ईमानदारी, लोकतंत्र, शालीनता, और समझदारी के चार गुण स्पष्ट हैं। नरेन्द्र मोदी में ईमानदारी, तानाशाही, परिस्थिति अनुसार शालीनता परिश्रम और आंशिक रुप से चालाकी स्पष्ट दिखती है। अरविंद केजरीवाल में ईमानदारी,तानाशाही, कठोर परिश्रम तथा तो स्पष्ट है ही और शालीनता के विषय में भी कुछ स्पष्ट नही है साथ ही अरविंद जी में अन्य सब की अपेक्षा एक विशेष गुण दिखता था कि वे लोकतंत्र से भी आगे जाकर स्वराज्य की दिशा में बढ़ेंगे। स्वराज्य की दिशा तो बिल्कुल धुमिल ही हो गई किन्तु पिछले एक वर्ष के कार्यकाल में अरविंद में समझदारी का भी बहुत अभाव दिखा। परिश्रम के मामले में नरेन्द्र मोदी भी बहुत परिश्रमी है किन्तु अरविंद केजरीवाल की अपेक्षा

अवश्य ही कम होंगे। मैं पहले कभी नही समझता था कि अरविंद केजरीवाल में राजनैतिक समझदारी की इतनी कमी होगी।

जब प्रशांत भूषण तथा यादव जी के विरुद्ध उन्होने अप शब्दों का प्रयोग किया था तब उससे पहली बार लगा कि अरविंद केजरीवाल भावना प्रधान भी हो सकते है। मैं स्पष्ट हूॅ कि जो व्यक्ति जितना अधिक भावनाओं में बहता है उसमें उतना ही अधिक समझदारी का अभाव होता है। यदि ऐसा भावना प्रधान व्यक्ति कहीं अपने को आवश्यकता से अधिक समझदार मानने लग जायें और पदलोलुपता में फंस जाये तो उसे तो मूर्ख ही मानना चाहिए। ऐसा व्यक्ति आमतौर पर ईमानदार तो होता है किन्तु समझदार नहीं होता। पिछले दिनों जब रेल विभाग की कार्यवाही में एक बच्ची की मौत पर अरविंद केजरीवाल ने मुख्यमंत्री होते हुए यह मांग कर दी कि प्रशासनिक अमले पर हत्या का मुकदमा दर्ज हो तो मुझे उनके आचरण से स्वयं पर शर्मिन्दगी महसूस हुई क्योंकि ऐसी मांग करना बहुत जल्दबाजी थी, गलत थी। इसके पूर्व भी अरविंद केजरीवाल जी ने बिना सोचे समझे कई लोगों को सुविधायें दे दी जो बाद में गलती सिद्ध हुई । लेकिन अरविंद केजरीवाल जी ने राजेन्द्र कुमार पर सीबी आई के छापे पर जिस तरह आचरण किया उससे मेरा विचार पूरी तरह बदल गया। अरविंद केजरीवाल ने यह कहकर स्वयं को हसी का पात्र बना लिया कि यदि सीबीआई को छापा मारना था तो मुझे पूर्व सूचना क्यों नहीं दी। दूसरी ओर उन्होने यह भी कहा कि यह छापा तो मेरे विरुद्ध था और राजेन्द्र कुमार तो एक बहाना मात्र थे। मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी ये दोनों बाते एक साथ नहीं कह सकता जो अरविंद केजरीवाल जी ने कही। यह अलग बात है कि उनका सवा पांच सौ करोड़ का मीडिया का बजट उन्हें ऐसी गलतियों से भी बचाता रहा अन्यथा मीडिया तो इसकी बाल की खाल निकाल देता। अरविंद केजरीवाल जी ने अरुण जेटली पर आक्रमण किया। स्पष्ट है कि यह आक्रमण उन्होने अपने अधिकारियों को बचाने के लिए किया न कि आक्रमण के लिए। उन्होने जिस भाषा में नरेन्द्र मोदी पर आक्रमण किया वह भाषा भी शालीन नहीं थी। मैं मानता हूॅ कि अरुण जेटली और राजेन्द्र कुमार दोनों ने कोई भ्रष्टाचार नही किया। संभव है कि दोनों के कार्यो में कुछ गैर कानूनी हुआ हो। मैं यह भी मानता हूॅ कि अरविंद केजरीवाल जी की व्यक्तिगत जानकारी में राजेन्द्र कुमार पूरी तरह ईमानदार व्यक्ति रहे है तो ऐसी स्थिति में अरविंद केजरीवाल जी को इतना बौखलाना क्यों चाहिए था? क्या अरविंद केजरीवाल जी इसके पूर्व अपने एक दो मंत्रियों पर इतना ही अधिक विश्वास करके और बौखलाकर धोखा नही खा चुके थे? स्पष्ट है कि अपनी पहचान करने की क्षमता पर दो तीन बार असफल होने क बाद भी उन्होने वही भूल फिर दुहराई।

मैं अब भी मानता हूॅ कि अरविंद केजरीवाल भ्रष्ट नहीं है, मेहनती है और तानाशाह है किन्तु स्वराज्य पर तो उनका विश्वास धोखा ही सिद्ध हो रहा है, साथ ही उनकी शालीनता और समझदारी पर भी मुझे भारी संदेह हो गया है। मैं महसूस करने लगा हूॅ कि उनमें प्रधानमंत्री बनने की कोई विशेष योग्यता नहीं है क्योंकि अरविंद केजरीवाल नरेन्द्र मोदी का खुला विरोध करने वालों की दौड़ में सबसे आगे निकलने को अपनी सर्वोच्च योग्यता सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं अब भी मानता हूॅ कि प्रधानमंत्री बनने की योग्यता में नीतिश कुमार , नरेन्द्र मोदी से बहुत आगे है भले ही नीतिश कुमार को सारे गड़बड़ लोगों को साथ लेकर चलने की मजबूरी हो। फिर भी अब इस दौड़ में दो ही लोग दिख रहे है और जितनी जल्दी अरविंद केजरीवाल स्वयं को दौड़ से बाहर कर ले उतना ही उनके लिए भी अच्छा होगा और देश के लिए भी अच्छा होगा। अन्यथा कही ऐसा न हो जाये कि चौबे गये छब्बे बनने दुबे होकर आये।

1 यह सच है कि मैने अरविन्द केजरीवाल और अरूण जेटली की तुलना करते समय अरूण जेटली को भी इमानदार लिखा जबकि यह सच है कि उनके कार्यकाल मे भारी भ्रष्टाचार है।

लीक छोड़ तीनहि चले

पिछले दिनों मैंने फेसबुक पर यह विचार व्यक्त किया था कि भारत को पाकिस्तान के साथ संबंध सुधारने की पहल करनी चाहिए और यदि ऐसी पहल करने में आंशिक रुप ये कुछ समझौता भी करना पड़े तो करना चाहिए। पिछले दिनों नरेन्द्र मोदी ने ऐसी पहल करके न सिर्फ मेरा दिल जीत लिया है बल्कि उन्होने सम्पूर्ण विश्व के शांतिप्रिय लोगों का दिल जीता है। सारी दुनिया में उनकी प्रशंसा हो रही है, कुछ युद्ध उन्मादी तत्वों को छोड़कर, जिनमें हाफिज सईद, शिव सेना तथा कुछ अन्य ऐसे ही तत्व शामिल हैं। भारत के औसत मुसलमानों ने इस कदम की प्रशंसा की है और पाकिस्तान के मुसलमानों में से उग्रवादी तत्वों को यह बुरा लगा है। दूसरी ओर पाकिस्तान के सामान्य हिन्दुओं को यह पहल बहुत पसंद आयी है, और भारत के साम्प्रदायिक हिन्दुओं को अच्छा नहीं लगा है। स्वाभाविक है कि भारत के साम्प्रदायिक हिन्दू और पाकिस्तान के साम्प्रदायिक मुसलमानों को अपना रोजगार छिनने का भय पैदा हो गया है। जिस हिन्दू मुसलमान या भारत पाकिस्तान के टकराव को आधार बनाकर ये लोग अपनी दुकान चलाते थे उसे खतरा पैदा हो गया है।

मुझे आश्चर्य हुआ कि कांग्रेस पार्टी ने नरेन्द्र मोदी की इस बात का यह कहकर विरोध किया कि जब कांग्रेस सत्ता में थी और ऐसा ही कदम उठा रही थी तब भाजपा ने उन्हें वैसा नहीं करने दिया । यह सच है कि उस समय भारतीय जनता पार्टी ने मनमोहन सिंह के किसी भी शांति प्रस्ताव में रोड़े अटकाये। किन्तु वर्तमान में कांग्रेस पार्टी उस कदम को आधार बनाकर विरोध नहीं कर सकती क्योंकि उस समय जो किया गया था वह भारतीय जनता पार्टी का कदम था, संघ से प्रेरित था, जबकि वर्तमान पहल नरेन्द्र मोदी की ओर से की गई है और इसमें भारतीय जनता पार्टी या संघ परिवार की कितनी सहमति है और कितनी मजबूरी यह नहीं कहा जा सकता । मुझे तो लगता है कि कांग्रेस पार्टी का विरोध मुख्य रुप से इस बात को लेकर है कि कहीं भारत के मुसलमान मोदी के विरुद्ध विरोध की भाषा बोलना बंद न कर दें। क्योंकि आमतौर पर भारतीय राजनीति में मुसलमानों को भाजपा विरोधी माना जाता है और यह पहल उस भाजपा विरोध में बदलाव की शुरुवात करेगी। यहॉ तक कि कश्मीर के प्रमुख मुस्लिम नेताओं ने भी नरेन्द्र मोदी की इस पहल का स्वागत करके कांग्रेस की मुश्किले बढ़ा दी हैं। नरेन्द्र मोदी के इस अकस्मात कदम ने यह सिद्ध कर दिया है कि नरेन्द्र मोदी शायर सिंग सपूत के समान लीक छोड़कर चलने की इच्छा, योग्यता, और क्षमता रखते हैं।